प्रायश्चित

(त्रयोदश सर्ग)

सरसी छन्दः

अव आगे सदैव रहना है, निर्जन में मम वास ।
गिरवर की कन्दरा रहेगी, नीरव कठिन निवास ।
साथी रहें हमारे तृणभोजी अरण्य के जीव ।
एकाकीपन वने आज से, इस जीवन की नींव ।।०१।।

नहीं देखना मानव आकृति पाराशर से भिन्न ।
वैठूँगा उनके चरणों में मन होगा जव खिन्न ।
तीन सहस्त्र वर्ष मुझको हैं मानो कल्प समान ।
नहीं किन्तु केशव प्रति मुझको आज स्वल्प भी मान ।।०२।।

त्यागी थी विप्रता मूढ़तावश त्यागा सद्धर्म ।
हुए पक्वफलधारी पादप अपने ही दुष्कर्म ।
किसको हुआ भूतिप्रद[1] जग में निज पद से अवपात[2] ।
कितना अहा! दुरन्त[3] निरागस[4] पर करना आघात ।।०३।।

जितना रक्त बहाया रण में वहा चुकी यह देह ।
विवश वसा है जीव हो चुका जर्जर व्रणयुत गेह ।
नहीं नवीन यदपि मुझको हैं ये सव रिसते घाव ।
तन मन की वेदना किन्तु धरती नित नवल प्रभाव ।।०४।।

पहले भी थे घाव किन्तु थे सबल देह प्रच्छन्न ।
मन में रिसते रहे चेतना को करते अवसन्न ।
मुनिकुमारगण का आश्रम में उच्छृंखल उपहास ।
यावचूर्णरस[५] पयभ्रम पीकर मेरा निश्छल हास ।।०५।।

देकर गया प्रथम व्रण मन को प्रकरण यद्यपि क्षुद्र ।
नहीं मिटा पाये वह कटु स्मृति गजपुर[६] भोग अमुद्र[७] ।
द्रुपदराज कृत तात अवज्ञा गयी हृदय को चीर ।
याचक बने पिता मेरे हित जुट न सका गो क्षीर ।।०६।।

वैभव सकता डाल किस तरह मैत्री में उपरोध[८] ।
देखा विद्या को करते जब लक्ष्मी से अनुरोध ।
कितना निष्ठुर हो सकता है सिंहासन आरुढ़ ।
सत्ता से विरक्ति उस दिन से मन में हुई प्ररुढ़[९] ।।०७।।

निज प्रतिशोध हेतु शिष्यों के कौशल का उपयोग ।
धनुर्वेद का और शास्त्र का राजनीति से योग ।
किया जनक ने हुए सफल भी किन्तु रहा यह खेद ।
प्रतिकर्माश्रित[१०] सख्य न सम्भव समझ न पाये भेद ।।०८।।

अहिभोगोपम[११] मुझे लगा था वह अहिछत्री[१२] छत्र ।
दान-पात्र दे रहा छात्र होकर भी देखो क्षत्र ।
विद्या अतिपावनी दक्षिणा का हिंसामय कृत्य ।
क्या हो सकता द्विज को ऐसा ग्रहण कभी आदृत्य[१३] ।।०९।।

है दानीय[१४] विप्र तो था क्या यह कुछ सात्त्विक दान ।
छीन एक से दिया दूसरे को पद वैभव मान ।
निज पौरुष अर्जित होता यदि इससे छोटा राज्य ।
मिलता सहज मान नृपगण का हमें सतत अविभाज्य ।।१०।।

पुनः यहाँ भी दोषी मैं ही था स्वीकृत यह तथ्य ।
राजा बनकर रहे प्रभावी वैभववान अपत्य ।
यही सोच सुत मोहवश्य हो किया अनूठा कार्य ।
ऐसी गुरुदक्षिणा माँगता कौन यहाँ आचार्य ।।११।।

किया वशंवद[१५] राजभक्ति ने राज्याश्रय के भोग ।
बने आत्मबल कृन्तक नयक्षयकारी[१६] दुर्दम रोग ।
वसुप्रियतावश[१७] किया विमुखवसु[१८] यह भी क्या अज्ञात ।
कटवाकर अंगुष्ठ किया गुरु गौरव पर आघात ।।१२।।

अङ्गज मोह तिमिर में मज्जित यदि थे कौरव राज ।
बनें उन्हीं के अनुयायी गुरु भी विवेक को त्याग ।
स्वयं नृपति हो अक्ष[१९] अक्षक्रीड़ा[२०] भी फिर अनिवार्य ।
वनिता अवमानना वहाँ पर क्यों न बनें स्वीकार्य ।।१३।।

पूछ रहा मुझसे मेरा जनपद उत्तर पान्चाल ।
नव नृप कब आएंगे लेने सदय प्रकृति का हाल ।
गजपुर में ही रहा देखता शकुनि नीति के खेल ।
हो न सका अहिक्षत्रपुरी का नूतन नृप से मेल ।।१४।।

राजेश्वर के निकट बैठकर भारत भर का मान्य ।
बनने की उत्कट अभिलाषा अब क्यों करूँ अमान्य ।
यदि सयत्न पालता प्रकृति को मिलता पुण्य महान ।
मात्र रहा गुरुसुत बन पुर में तथाकथित विद्वान ।।१५।।

लाक्षागृह तक ले जाता है नर को सत्ता लोभ ।
सुनकर यह षडयन्त्र हुआ था मन में अति विक्षोभ ।
अगला शल्य लगा उर में जब हुआ कि तवयुत[२१] द्यूत ।
आगामी घटना क्रम उस गर्हित[२२] आचारोद्भूत ।।१६।।

छल से विद्ध शरीर गिरे जब शान्तनु नन्दन पूत ।
उनके बाण मुझे उर भीतर गढ़े हुए अनुभूत ।
लगा धर्म ही हो क्षत विक्षत गिरा रणाङ्गण बीच ।
नीतिलता को विजयेच्छा ने दिया गरल से सींच ।।१७।।

भूरिश्रवा वृत्तान्त दे गया एक और आघात ।
रहा बचा उर दीर्ण कर गया छलोपात्त पितुघात ।
चक्रोन्नयन प्रयास निरत रणविरत कर्ण अवसान ।
चूर्णितोरु कुरुनाथ कर गए मम उर चूर्ण समान ।।१८।

किन्तु नहीं होता अनीति का मात्र अनय प्रतिकार ।
हिंसा का दुश्चक्र प्रवर्तित होता बस दुर्वार ।
प्रतिशोधों से मात्र भभकती अन्तर्दाही ज्वाल ।
नहीं शान्ति दे सकता मन को अरि का कर्तित[२३] भाल ।।१९।।

यदि मानी होती मातुल की परम हितकरी बात ।
नहीं मनुजता से होता मम अन्तहीन अवपात ।
कोप सघनघन आच्छादित करता विवेक का अर्क ।
मूढ़बुद्धि को युक्तियुक्त वाणी भी लगे कुतर्क ।।२०।।

दीप्त-नयन-वनसत्व घूमते दिखते मुझको रात ।
लिए मशाल संभ्रमित योद्धा से होते प्रतिभात ।
ईषत्[२४] उद्भासित तम में ये तुङ्ग पादपी शृंङ्ग ।
लगते मुझे पाण्डु पाञ्चालों के शिविरों के अङ्ग ।।२१।।

जब जब घूत्कार करता है वन में छिपा उलूक ।
उठती है उर में रह रहकर पीड़दायी हूक ।
मानो मुझ दुर्मेधा[२५] का वह करता है उपहास ।
कर तेरा उपयोग किया है मैंने विजन विकास ।।२२।।

मुझको आयुष्काम बताकर सत्यार्थी गाङ्गेय[२६] ।
मिथ्यावादी बनें मानता मैं जीवन को हेय ।
इच्छामृत्यु वास्तविक वर था नहीं मुझे वह लभ्य ।
नहीं दीर्घ जीवन गरिमामय मृत्यु मनुज हित भव्य ।।२३।।

उल्कावत फैलाकर आभा श्रेष्ठ सदा निर्वाण ।
नहीं धारना ज्वालामुखसम चिर तक जलते प्राण ।
थम सा गया काल मेरे हित मात्र प्रवाहित रक्त ।
रुधिर खूब दिखलाया केशव अब हो गया विरक्त ।।२४।।

सार छन्द

याद दिलाती रक्तिमता की, अब प्राची की लाली ।
देख नैशतम आती सम्मुख, हा! वह रजनी काली ।
अनिल-संचरण जात शब्द जो, उठता शैलविवर से ।
लगता है चीत्कार शब्द सा, अर्दित युद्ध शिविर से ।।२५।।

सवैया (मत्तगयन्द)

अर्भक[२७] गर्भ अवस्थित भी जिसने,
निज आयुध लक्ष्य बनाया ।
सुप्त पड़े अरि को कर मर्दित,
अर्दित[२८] पाण्डव सैन्य कराया ।
तू बस व्याध पिशाच बना नर -
शोणित मध्य समोद नहाया ।
द्रोण-सुपुत्र सुयोधन-मित्र,
महारथ विप्र कुलीन कहाया ।।२६।।

आसुरवृत्तिज था अपकर्ष[२९]
नहीं वह थी कुछ जीत तुम्हारी ।
शत्रुविनाश नहीं उस रात्रि,
हुई जग में नरता क्षति भारी ।
वीर कृपीज रचा निशि व्यूह,
लिया प्रतिशोध रही मति न्यारी ।
क्रूर किरात हुआ द्विजसूनु,
महारथ घोर बना निशिचारी ।।२७।।

भूतल-भारस्वरूप बना यह,
जीवन और कहाँ तक ढोऊँ ।
सुख गया दृगनीर निरन्तर,
हूँ परितप्त कहाँ तक रोऊँ ।
शाप बना यह आयत जीवन,
रूठ गयी चिर नींद न सोऊँ ।
पावन कार्य सुवारि नहीं हतभाग्य,
कथंविधि[३०] पातक धोऊँ ।।२८।।

सरसी छन्द

भूल चुका था काल परिगणन लगा यत्न वह व्यर्थ ।
अन्यों से सन्दर्भित होकर गणना रखती अर्थ ।
चिरजीवी के लिए काल है अविरल और अखण्ड ।
शप्त और परित्यक्त हेतु यह निरवधि[३१] दंशक[३२] दण्ड ।।२९।।

मम वपु गन्धाकृष्ट न आएं पिशितार्थी[३३] क्रव्याद[३४] ।
तुच्छ देह भी रक्षणीय यह सोच हुआ अवसाद ।
यज्ञ-धूम-आवरण हेतु मैं करता था नित होम ।
अग्निमुखी[३५] कर गुफा रात्रि में छिड़का करता सोम ।।३०।।

वहुशः हुआ प्रतिध्वनित रोदन विजन गुहा के बीच ।
उपधानोचित[३६] शिला नयन-जल गया भूरिशः सींच ।
अगणित क्षणदाए[३७] बीतीं पर क्षण न मिला विश्राम ।
लगता था है नहीं अरति का कोई पूर्ण विराम ।।३१।।

नहीं मक्षिकाभिन्न मुझे था द्वेष्य क्षुद्र भी जीव ।
हुई व्यास की कृपा देख ली जग जीवन की नींव ।
दह्यमान[३८] उर लिए धरे पीड़ायुत कुत्सित देह ।
भ्राम्यमान[३९] चिरकाल अलक्षित[४०] भू पर रहा अगेह ।।३२।।

जब रजनी में हुआ गुहाशय[४१] सुनता था घन शब्द ।
क्षण को तिमिर भंग करती थी तड़ित विदारित अब्द[४२] ।
तब उत्तरा-गर्भशायी शिशु सहसा आता याद ।
क्या क्या करा गया था मुझसे प्रतिशोधी उन्माद ।।३३।।

उठता था मैं चीख जगाते गुरु करते आश्वस्त ।
निर्निमेष मैं देख शून्य में रहता था संत्रस्त ।
माँग रही कृष्णा सकरुण आँचल सामने पसार ।
पंच-प्राण मेरे लौटा दो करो द्रौणि उपकार ।।३४।।

आता था बहुधा द्रुपदात्मज[४३] दीन माँगता स्वर्ग ।
कहता था द्रोणाङ्गज मेरा व्यर्थ गया उत्सर्ग ।
भटक रहे तुम व्यग्र धरा पर मैं प्रेतों के लोक ।
किया न शस्त्राघात दिया तुमने मुझको चिर शोक ।।३५।।

विकृतानन[४४] कर्तित शिर कन्धर खण्डित क्लिन्न शरीर ।
मुझे दीखते थे सपनों में द्रौपदेय[४५] रणधीर ।
तुम्हें सिखाया पुत्र! ब्रह्मशिर क्या इसके ही हेतु ।
कहते तात स्वप्न में आकर तुम अपयश के केतु ।।३६।।

सन्ध्यारत जव एक दिवस रवि को था रहा निहार ।
शीतल सौरभ युक्त पवन का सहसा हुआ विहार ।
भार हीन सा हुआ, देह का था उपशमित प्रदाह ।
एक नवल थी स्फूर्ति उठा ऊर्जा का विशद प्रवाह ।।३७।।

आए तभी समीप ज्ञान विग्रह से मुनिवर व्यास ।
बोले सविता ध्यानमग्न सुत तुझको कुछ आभास ।
डालो निज पर दृष्टि पूर्ववत हुआ तुम्हारा रूप ।
हेमवर्ण अति दीप्त बलाकर[४६] सुगठित सुभग अनूप ।।३८।।

देखा, उमड़ा हर्ष किन्तु युग लोचन हुए सनीर ।
गिरा दण्डवत ऋषिचरणों पर बोले वे उठ धीर ।
तीन सहस्त्र व्यतीत हो चुके भारत रण से वर्ष ।
आज तुझे प्रकृतिस्थ देखकर उर न समाता हर्ष ।।३६।।

मम समीप आगत विषधर को पकड़ा मृदुता धार ।
आए छोड़ दूर मालावत यदपि रहा फुफकार ।
देख मृगी के गर्भपात को जिस दिन रोये तात ।
समझ गया था शाप-विमोचन अब कुछ दिन की बात ।।४०।।

केवल तीन सहस्त्र! मुझे तो लगता पूरा कल्प ।
समा न सकती इस कालावधि में वेदना अनल्प[४७] ।
सानुक्रोश[४८] हो गये हरा हरि ने अजस्त्र उत्ताप ।
क्या मैं पुनः हो गया ऋषिवर! विमलमना निष्पाप ।।४१।।

नहीं घोर दुस्स्वप्न और अब आएंगे निशि मध्य ।
क्या होगी अब मुझे प्रमीला शम दायिनि अनवद्य[४६] ।
क्या अब पुनः प्राप्त होगी मुझको जन संगति रम्य ।
नगर तीर्थ आराम अभिगमन क्या है अब अनुमन्य ।।४२।।

देखे मैंने मात्र दूर से महावीर सिद्धार्थ ।
मन में था विश्वास भरत-भू होगी पुनः कृतार्थ ।
भय था वे ज्ञानी मुझको लेंगे क्षण में पहचान ।
वे करुणा की मूर्ति कहाँ मैं हिंसा का प्रतिमान ।।४३।।

खोई थी भालस्थ दिव्य मणि कर हिंसा अपकर्म ।
निशदिन कृन्तित रहे तभी से इस कृपीज के मर्म ।
प्रायश्चित है पूर्ण तपस्या का फल उदित प्रभूत ।
अब अन्तर में ही आभामय शीतल मणि उद्भूत ।।४४।।

योद्धा अव मर चुका प्रकट है अमर तुम्हारा रूप ।
आए बाहर निकल द्रौणि तुम अव न भेय[५०] भवकूप ।
अति अमेध्य[५१] अंकित[५२] जर्जर था केवल तव परिधान ।
रुद्रभक्त रुद्रांश[५३] उठो! तुम त्याग देह अभिमान ।।४५।।

है प्रार्थना पिनाकी[५४] से, मैं भूलूँ सारा ज्ञान ।
पुनः न उपजे मुझमें प्रभु दिव्यास्त्रजन्य अभिमान ।
रह जाए फिर से कृपीज वस एक मनुज सामान्य ।
करें न बुद्धि और मन मेरे आत्मा वचन अमान्य ।।४६।।

वोले व्यास पुत्र होता है कभी न क्षतिकर ज्ञान ।
मात्र मनुज-अविवेक जनित है जग आपदा महान ।
अव दावानल प्रशमनकर्ता वने तात वरूणास्त्र ।
अनावृष्टि, आपदा निवारक धारो पर्जन्यास्त्र ।।४७।।

जगदुपकारक होते सारे महामनुज के कार्य ।
भार्गव-क्रौञ्चवेध[५५] कर देता हंस द्वार व्यवहार्य।
भूमि स्खलनजन्य सरिता पर आए जव अवरोध ।
खर शर हो प्रयोज्य तुमको सुत हरना वह गतिरोध ।।४८।।

कर प्रायश्चित तपोनिरत हो दीर्घ शाप से मुक्त ।
तुम हो सुत अव स्वस्थ सुदृढ़ शोभन रोचन[५६] वपुयुक्त ।
हुए जितेन्द्रिय आत्मवान फिर अनघ[५७] अमल अवदात[५८] ।
वीती दीर्घ तमिस्रा[५९] देखो अव आभामय प्रात ।।४९।।

अव तक रहे शापवश निर्जनवासी जन से दूर ।
अव जाओं वन भूत हितैषी देखो जग भरपूर ।
भारत भू पर शासन करते शुंग[६०] वंश के भूप ।
अश्वमेधकर्ता श्रुति सेवी शासन मनु अनुरूप ।।५०।।

जिस भारत का हर प्रदेश अब होगा तव गन्तव्य ।
सुत बतलाओ मुझको भारत विषयक निज मन्तव्य ।
बोले द्रौणि चित्त में अंकित भरत भूमि का चित्र ।
शस्य-हरित वसुमती[६१] नीति विद्याकर धर्म पवित्र ।।५१।।

छन्द

शुभ्रता हिमाद्रि की सुरापगा[६२] की पूतता है,
शस्ययुक्त भूमि का प्रसार दिव्य भारत है ।
थार की मरीचिका हरीतिमा है कामरूपी[६३],
अर्णव की नीलिमा गभीरता ही भारत है ।
तिग्मरश्मि[६४] का प्रताप, सोम की सुधा का वास,
घन घोष शीतल फुहार दिव्य भारत है ।
कूजन विहंगजात, नृत्य शिखियों का प्रात,
वनराज गर्जना प्रचण्ड दिव्य भारत है ।।५२।।

तप विघ्नकारी रतिपति का प्रदाह तूर्ण,
अद्रिजा[६५] की दीर्घ तप साधना ही भारत है ।
वर्धमान[६६] की अजस्र[६७] वर्धमान करुणा है,
पूर्ण[६८] और शून्य[६९] की विचारणा ही भारत है ।
तारापति[७०] सत्य दान दुर्लभ दधीचि का है,
तारकारि[७१] विक्रम गणेश-बुद्धि भारत है ।
दानवारि विष्णु की पवित्र यह लीला भूमि,
भूमिजा की भव्यता सहिष्णुता ही भारत है ।।५३।।

विष्णुगुप्त[७२] धी अनीति मर्दिनी विदुर नीति,
ध्रुव की ध्रुवा प्रतीति ही विराट भारत है ।
शिबि[७३] की कृपा कयाधु-पुत्र[७४] की विशेष भक्ति,
बलि की उदारता का सार दिव्य भारत है ।
भीष्म की प्रतिज्ञा घोर यत्न है भगीरथ का,
आदिकवि वाणी का प्रवाह दिव्य भारत है ।
शस्त्र और शास्त्र का सुमेल जामदग्नि का है,
शिव और शक्ति का सुयोग भारत है ।।५४।।

ऋषियों की दिव्य दृष्टि ज्ञान की समष्टि और,
भारती की भाव वृष्टि ही विराट भारत है ।
तुङ्गता का प्रतिमान अभिमान शूरता का,
सन्तजन का सम्मान ही विराट भारत है ।
जिष्णुता का संकल्प दृढ़ व्रत सहिष्णुता का,
प्रभविष्णुता का भी प्रकाण्ड स्रोत भारत है ।
आरत शरण आभरण गुण गरिमा का,
पालना मनुष्यता का ये विराट भारत है ।।५५।।

सरसी छन्द

चले समुद ले आशिष ऋषि का भास्वर[७५] भानु समान ।
अश्वत्थामा - परम समुत्सुक लें भारत का ज्ञान ।
पुनः विलोकें शश्य श्यामला भूमि नगर प्राकार ।
गाता नाविक, हँसता हलधर, श्रेष्ठी जन व्यवहार ।।५६।।

क्रीड़ारत देखूँ शिशुओं को उमड़े उर वात्सल्य ।
झूलों पर झूलती बालिकाओं का पटु चाञ्चल्य ।
देखूँ लातीं नीर तरुणियाँ दुही जा रही धेनु ।
लड़ते मल्ल हरिप्रिया[७६] पूजित और बज रही वेणु ।।५७।।

धनाक्षरी छन्द

विक्रम[७७] का विक्रम विलोक के अतीव तुष्ट,
गुप्तवंश गुप्त[७८] वसुधा ही वसुधा[७९] थी ।
ज्ञान की विभिन्न थीं विधाएं भी विकाशमान,
थी गिरा प्रसन्न बरसाती सी सुधा थी ।
थे प्रजा प्रहर्ष हर्ष भोज जैसे भूमिपाल,
नीतिमार्गयान में न कोई दुविधा थी ।
परमार्थ लाभ हेतु चिन्तना थी चिन्तकों की,
दीखती कहीं न द्रव्य चिन्तना मुधा[८०] थी ।।५८।।

घूमते सभी प्रदेश अपना छिपा के वेश,
फिर वे अशेष वृत्त गुरु को बताते थे ।
भारत का वर्धमान गौरव विलोक के वे,
वार-वार साधु कह हर्ष को जताते थे ।
ईति[८१] और विप्लव थे मात्र अपवादरूप,
पशु को भी लोग हो दयार्द्र न सताते थे ।
कोई भी अनीति देख होते थे विषादग्रस्त,
व्यास तव द्रौणि को सप्रेम समझाते थे ।।५६।।

सरसी छन्द

अष्टादश अक्षौहिणि बल का लेकर भी बलिदान ।
धर्मयुक्त द्वापर रह पाया छत्तिस वर्ष प्रमाण ।
केशव गए मिटा यदुकुल पाण्डव कर गए प्रयाण ।
देख रहा श्री शक्ति सुमति को जाते, जलते प्राण ।।६०।।

आया कलि ले कलुष कुमति पाखण्ड और अज्ञान ।
वित्तेषणा द्रोह छल हिंसा कामुकता अभिमान ।
पुत्र तुम्हारे लिए विजनता नहीं रही अभिशाप ।
विप्लव देख भरत वसुधा पर होता गुरु परिताप ।।६१।।

जाओ देखा नर समाज को किन्तु न भूलो तथ्य ।
नहीं सभ्यता संस्कृति रखती एक काल सातत्य[८२] ।
अतः निराशा ही लाएंगे द्वापर के प्रतिमान ।
परिवर्तन अनिवार्य जगत में रहे सदा यह ध्यान ।।६२।।

यद्यपि अन्तिम चरण द्वापरी भी कुछ रहा सदोष ।
हिंसा छल अपहरण द्यूत मद माने जाते दोष ।
जन स्वीकृत आचार बनेंगे कलि में ये अपचार ।
पीड़ित होंगे सुधी धर्म पर होंगे विषम प्रहार ।।६३।।

ज्ञान रश्मि युत हृदय कहीं यदि पाओ पुत्र सयल ।
उसे जानना परम प्रीत हो धरणी पर नर रत्न ।
दुष्ट काल में भी रह जाते ऋतु[८३] के बीज प्रभूत ।
जिनकी आभा करती रहती सव भूतों को पूत ।।६४।।

घनाक्षरी छन्द

एक बार किन्तु वहुकाल वाद लौटे जव,
थे न द्रोणपुत्र मूर्तिमान ही विषाद था ।
उनको विलोक व्यास भी हुए अशान्त चित्त,
कुञ्चित था भाल लुप्त क्षण को प्रसाद था ।
अविरल था अश्रुपात कण्ठ था अतीव रुद्ध,
उर का निकलने को व्यग्र अवसाद था ।
पकड़े चरण ऋषि के गिरे सवेग द्रौणि,
आश्रम में गूँज उठा रोदन निनाद था ।।६५।।

मराल छन्द

कहा फिर वड़े कष्ट से ऋषे!
विगत भारत माता का हास ।
लुट चुका है समस्त श्रृंगार,
बना संस्कृति गौरव इतिहास ।
रहा फिरता व्याकुल मैं मुने!
गए हैं बीत सैकड़ों वर्ष ।
लिए आशा का संबल क्षीण,
पुनः देखूँ भारत उत्कर्ष ।।६६।।

स्वर्ग पर करने को अधिकार,
दनुज करते थे बहु उत्पात ।
उसी का कलियुगीन प्रतिरूप,
सहा भारत ने बर्बर जात ।
उठाती थी झंझा वायव्य[८४],
आँधियाँ आयीं बारम्बार ।
गयीं झुलसा भारत उद्यान,
कर गयीं क्षय का विषम प्रसार ।।६७।।

अग्नि परिवृत्त हुए पुर कटक[८५],
ग्राम देवालय ग्रंथागार ।
बनीं आग्नेय[८६] दिशा वायव्य,
दिशा व्यतिक्रम था अगम अपार ।
न पावक हव्यवाह[८७] अब रहे,
सर्वग्रासी हो गए कृशानु ।
शमित चतुरग्नि[८८] शमित श्रुतिगान,
अस्तशिखरोन्मुख भारत भानु ।।६८।।

मार्ग यवनों का रोका आशु,
न थे अब चन्द्रगुप्त से वीर ।
नहीं थे विष्णुगुप्त नयसार,
समुच्छेदक नन्दों के धीर ।
प्रजारञ्जनहित राजा बने,
सदा क्षत त्राता रहे महीप ।
भरत मांधाता रघु रघुवीर,
नहुष पृथु शिवि विक्रम कुलदीप ।।६९।।

किन्तु खो गया आर्य आदर्श,
हुआ वन्दी जब पृथ्वी[८९] वीर ।
सभ्यता हुई पद दलित तूर्ण,
भरत भू का रक्तिम था चीर ।
क्षात्रधर्मोचित चरित महान,
क्षितिप[९०] परक्षितिसक्षम[९१] वे वीर ।
गए सब छोड़ क्षमा[९२] को सदा,
क्षमाभूषण अक्षतयश धीर ।।७०।।

न सांगा अब थे कहाँ प्रताप,
ताप जिनके पौरुष का उग्र।
भीतिदायक म्लेच्छों को रहा,
रहे दुर्गस्थित भी अति व्यग्र।
केशरी गए बचीं बस माँद,
फाँदते फिरते जिन्हें श्रृगाल।
अरी आमेर सुनो चित्तौड़,
तुम्हीं से उन्नत भारत-भाल।।७१।।

विकल वसुधा थी अभिलुण्टिता[६३],
लुण्ठिता[६४] भू पर प्रजा समस्त।
आर्य पौरुष का भास्वर भानु,
हतप्रभ विचलित होता अस्त।
लजाई गई सलज्ज असंख्य,
मानवीं क्षुधित दानवों बीच।
नगर देवालय ग्रंथागार,
ग्राम करते प्रदग्ध वे नीच।।७२।।

वारुणी, वारण[६५] हय करवाल[६६],
कामिनी कञ्चन हिंसा मांस।
गृध्नुता[६७] उपधि[६८] वञ्चना वैर,
राज आचार चिह्न जनत्रास।
आक्रमण धन दारा अपहरण,
क्षरण संस्कृति का अनुमत कर्म।
धर्मदूषण सच्छास्त्र विनाश,
भोग विस्तार रहा रिपु धर्म।।७३।।

मिली मन्दाकिनि से कालिन्दि,
रुधिर सरिता फिर मिली सवेग ।
सत्व तम रज का करता मेल,
म्लेच्छ हिंसानर्तन आवेग ।
खण्डहर मन्दिर खण्डित मूर्ति,
वृद्ध शिशु अबला पावकसात ।
विप्र ज्ञानी निरीह तक सन्त,
झेलते ते निर्मम असिपात ।।७४।।

मार्ग दिखलाता कैसे ज्ञान,
विपश्चित[९९] मृत थे या फिर मौन ।
छत्रधर रक्षक थे क्षतमान[१४१],
गोत्र[१००] बनता ऐसे में कौन ।
थमा जब हिंसा का आवेग,
शान्ति का देखा फिर कुछ काल ।
नवलवसना नवभूषणवती,
वसुमती हुई दीप्त था भाल ।।७५।।

तभी आए हिरण्यमय[१०१] दृष्टि,
शुक्ल था जिनका केवल बाह्य ।
मनुज तक थे विक्रय की वस्तु,
जिन्हें था मात्र वित्त सङ्ग्राह्य ।
स्वार्थ साधन हो जिससे त्वरित,
वही थी दुर्विज्ञेया नीति ।
अरूपा नित नवार्थधारिणी,
महामायावत जनती भीति ।।७६।।

विगत वैभव परिभवयुत किया,
ऋद्धिमय वह भारत का खण्ड ।
शौर्य-बल-विक्रम था अभिभूत,
और विजयी था छल पाखण्ड ।
वणिकता जयध्वज उठता तुङ्ग,
क्षात्रबल पराभूत था आज ।
दासता का कटु अनुभव विवश,
सहन करता था सकल समाज ।।७७।।

वणिक से बने महा सम्राट,
दलित नरता को कर सप्रयास ।
खोज कर आयुध ध्वंस प्रधान,
शक्तिमत्ता का था आभास ।
भोगवादी हो जब सभ्यता,
जगत के संसाधन सुप्रभूत ।
तृषाकुल नर को होते सदा,
स्वल्प ही सब पदार्थ अनुभूत ।।७८।।

हुआ जब से स्वार्थीजन विधृत,
राष्ट्र को लगा पाण्डु का रोग ।
अक्ष[१०२] अनुमत दुःशासन बना,
अनीतिज कर्मफलों का भोग ।
सम्पदा साधन विपुल विराट,
न कर पाए शंकर[१०३] विनियोग ।
शल्य[१०४] मद का उर गहन प्रविष्ट,
शान्ति का खोया हर शुभ योग ।।७९।।

देव व्रत कब तक करते क्षेम,
मनीषा जब हो चुकी मलीन ।
मदोद्धत हों बहु नर बलसिन्धु,
राजनय होता विकृति अधीन ।
त्याग पर हुई स्वार्थ की विजय,
सत्य से जीता अनृत[१०५] विधान ।
विजित हिंसा से क्षमा अशेष,
ज्ञान उपहसित श्लाघ्य अज्ञान ।।८०।।

दोषहर बनीं रत्न की कान्ति,
धनिक बन गया सर्वजन मान्य ।
मात्र बन गया वित्त संग्राह्य,
न कोई भी विधि रही अमान्य ।
रहे श्रमजीवी सब क्षुत्क्षाम[१०६],
अनम्बर निर्बल शिशुतायुक्त ।
वहीं कुछ मनुज सौध[१०७] में समद,
अङ्गना[१६६] करते वास वियुक्त ।।८१।।

बनाते विपथयान[१०८] अभिनन्द्य,
सुसंस्कृतिक्षयपटुविट[१०९] वाचाल ।
कुशीलव[११०] से अब हुए कुशील,
डालते जनता पर भ्रमजाल ।
बना अभिनेता पूजक लोक,
बन गये जननायक वे धूर्त ।
दिया नेतृत्व जिन्होंने सत्य,
हो गये वे सब मूल्य अमूर्त ।।८२।।

घनाक्षरी छन्द

धर्म के प्रचारक बने हैं आततायी और,
लोभग्रस्त कामयुक्त पूजकों के मन हैं ।
विद्या के धाम बन गये हैं राजनीति क्षेत्र,
विप्लवी हैं छात्र गतमान गुरुजन हैं ।
बुद्धिहीन बलवान क्रूर व्यक्ति आसनस्थ,
नित्य अवमानना के पात्र ज्ञानधन हैं ।
धन से है क्रेय[१११] सुख न्याय और राजकृपा,
मोषकों[११२] के दीखते विचित्र से सदन हैं ।।८३।।

मद्य मांस सेवन बना प्रगामिता[११३] का चिह्न,
लज्जा परित्याग आधुनिकता कहाता है ।
व्यक्तिवाद का प्रसार भोग कामना अशेष,
तोड़ती मनुष्यता का मानव से नाता है ।
है वही सुबुद्धि स्वीय[११४] सभ्यता की निन्दना से,
और आत्मवंचना से जो नहीं अघाता है ।
है वही कृतार्थ जो कुटुम्ब और सम्पदा को,
देश से निकाल के विदेश में बसाता है ।।८४।।

भारतीय भूमि दर्शनीय अब और नहीं,
धर्मभेद और जातिभेद ही प्रबल है ।
ऋजुता[११५] है लुप्त क्षीण नर की मनस्विता है,
वित्त की तृषा है सर्वत्र व्याप्त छल है ।
मन का है राज्य बुद्धि सेविका है वासना की,
जीवन है रण एक दाहक अनल है ।
शोषक सबल मात्र पात्र सुख भोग का है,
सर्वजन किन्तु त्रास वेदना विकल है ।।८५।।

संगति न जन की रही अभीष्ट अब और,
हिमवान क्रोड में ही जीवन बिताऊँगा ।
भारत की भव्यमूर्ति भूत में रही जो ऋषि,
भूल वर्तमान उसे उर में छिपाऊँगा ।
लोकभूति कामना तजी क्या नारदादि ने भी,
निष्ठुर हुए हैं हरि यह बतलाऊँगा ।
बाह्य विश्व वेदना का स्रोत है मुझे प्रतीत,
त्याग मोह मैं अखण्ड योग ही लगाऊँगा ।।८६।।

बोले व्यास त्याग सकता है,
जग में कौन जगत को ।
सहृदय कौन भूल सकता है,
अपने वितत विगत को ।
सब कुछ छोड़ो फिर भी,
वपु तो अपने साथ रहेगा ।
कौन सुधी इसको न जगत का,
ही लघु भाग कहेगा ।।८७।।

बुद्धि और मन भी लगते जो,
हमको अति निज अपने ।
वे भी हैं संसार भाग ही,
छोड़ो निजता सपने ।
पाओगे एकान्त कहाँ पर,
निर्जन पा सकते हो ।
कैसे मनो राज्य को सुत तुम,
सपदि मिटा सकते हो ।।८८।।

सूक्ष्म एक संसार लिए,
मन मध्य मनुज चलता है ।
वही बीज है बाहर जिससे,
स्थूल सकल फलता है ।
एक अन्त में रह जाए जब,
पूर्ण खोज तब होती ।
प्रज्ञा उससे पूर्व अहं के,
राजसौंध में सोती ।।८६।।

एक वही भासित होता है,
पीछे वही छिपा है ।
नहीं बाह्य अनुधावन में,
अन्तर में गूढ़ मिला है ।
जब जानोगे जगत मात्र उस,
एक तत्व की सत्ता ।
उससे भिन्न न कुछ समझोगे,
तब एकान्त महत्ता ।।६०।।

जब ऐसा एकान्त तुम्हारे,
अनुभव में आएगा ।
नहीं पुनः अज्ञान मेघ,
चेतन रवि पर छाएगा ।
सब भ्रम भेद विचार व्यग्रता,
एषा भय कोपानल ।
होंगे झट उपशमित न,
होगा फिर संसार दवानल ।।६१।।

देखोगे फिर तुम तटस्थ हो,
संसृति में प्रभु लीला ।
नहीं करेगी बाधित माया,
अति पटु नर्तन शीला ।
होगा जब वैविध्य लोप,
एकान्त जान पाओगे ।
नित आनन्द सिन्धु मज्जित
ही निज को तुम पाओगे । । ६२ । ।

सन्दर्भ सूची

१. कल्याणकारी, २. पतन, ३. दुःखद अंत वाला, ४. निष्पाप, निरपराध, ५. जौ के आटे का घोल, ६. हस्तिनापुर, ७. विस्तृत, असीम, ८. बाधा, ९. बद्धमूल, विकसित, १०. प्रतिशोध पर टिका हुआ, ११. सर्प के फण के समान, १२. अहिछत्र नगरी का, यह उत्तर पाञ्चाल प्रदेश की राजधानी थी, १३. आदरणीय, १४. दान योग्य, १५. वशवर्ती, १६. नीति को विनिष्ट करने वाला, १७. धन के प्रति आकर्षण के कारण, १८. कर्ण, १९. जनमान्य, २०. पासे की क्रिया, द्यूतक्रीड़ा, २१. छलपूर्ण, २२. निन्दित, २३. काटा गया, २४. कुछ-कुछ, २५. दुर्बुद्धि, २६. गंगापुत्र भीष्म, २७. गर्भस्थ शिशु, भ्रूण, २८. आक्रांत, नष्ट-भ्रष्ट, उत्पीड़ित, २९. पतन, अवनति, ३०. किस प्रकार, ३१. अन्तहीन, ३२. डसने वाला, पीड़ा पहुँचाने वाला, ३३. मान का इच्छुक, ३४. कच्चा मांस खाने वाला पशु, ३५. जिसके द्वार पर अग्नि जलाई गई हो, ३६. तकिए के रूप में प्रयुक्त, ३७. रातें, ३८. जलता हुआ, ३९. घूमता हुआ, ४०. अदर्शित जिसे किसी ने देखा न हो, ४१. गुफा में शयन करने वाला या गुफा का आश्रय लेने वाला, ४२. बादल, ४३. धृष्टद्युम्न, ४४. विकृत मुख वाले, ४५. द्रौपदी के पुत्र, ४६. बल का भंडार, ४७. प्रभूत बहुत अधिक, ४८. कृपालु, ४९. प्रशंसनीय, सुन्दर, ५०. जिससे भयभीत होना चाहिए, ५१. अपवित्र, ५२. कलंकित, ५३. भगवान शिव के अंश, महाभारत में अश्वत्थामा को शिव का अंश बताया गया है, ५४. शिव जी, पिनाक धारण करने वाले, ५५. परशुराम जी द्वारा विदीर्ण किया गया क्रौंच पर्वत पार करने योग्य हो गया है। कालिदास के मेघदूत के अनुसार इससे होकर हंस भारत में आते हैं। ५६. प्रकाशमान, ५७. निष्पाप, ५८. सुन्दर पवित्र निष्पाप, गुणी उज्ज्वल, ५९. रात्रि, ६०. मौर्यवंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ को उनके सेनापति पुष्यमित्र ने मारकर मगध की सत्ता हथियायी और शुंगवंश की स्थापना प्रथम शताव्दी ईसापूर्व की, ६१. धन से पूर्ण, ६२. गंगा, ६३. असम, जिसे पहले कामरूप कहा जाता था, से सम्बन्धित, ६४. सूर्य, ६५. पार्वती, ६६. बढ़ता हुआ, ६७. निरंतर,

६८. अद्वैत वेदांत का सिद्धान्त जिसके अनुसार ब्रह्म एक है और वही पूर्ण है। पूर्ण से जगत उत्पन्न होकर भी वह पूर्ण रह जाता है, ६६. शून्यवादी सिद्धान्त बौद्धों का है जिसके अनुसार निर्वाण के उपरांत कुछ शेष नहीं रहता, ७०. हरिश्चन्द्र, ७१. तारकासुर के शत्रु कार्तिकेय, ७२. चाणक्य, ७३. महान राजा शिवि जिन्होंने कबूतर की रक्षा के लिए बाज को अपना मांस काटकर दिया था और ईश्वर द्वारा ली जा रही परीक्षा में सफल हुए, ७४. हिरण्यकश्यप की पत्नी कयाधु से उत्पन्न प्रहलाद, ७५. प्रकाशमान, ७६. तुलसी, ७७. उज्जयनी के राजा विक्रमादित्य, ७८. रक्षित, ७६. विविध प्रकार के धनों को धारण करने वाली, पृथ्वी, ८०. व्यर्थ, अनावश्यक, ८१. विपत्तियाँ, जैसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि टिड्डियों का प्रकोप इत्यादि, ८२. निरन्तरता, ८३. सत्य, ८४. उत्तर पश्चिमी दिशा, ८५. राजधानी, दुर्ग, ८६. दक्षिण पूर्वी दिशा, ८७. हवन सामग्री देवताओं तक पहुँचाने वाले, अग्नि, ८८. गार्हपत्य, आहवनीय, आवसथ्य तथा दक्षिण नामक अग्नियाँ जो आर्य के घर या आश्रम सदा प्रज्वलित रहती थीं, ८६. पृथ्वीराज चौहान जो दिल्ली के शासक थे जिन्हें मुहम्मद गोरी ने तराइन के दूसरे युद्ध में जो ११६२ में हुआ था, में पराजित कर वंदी वना लिया, ६०. पृथ्वी की रक्षा करने वाला राजा, ६१. शत्रु के क्षय में समर्थ, ६२. पृथ्वी, ६३. पूरी तरह लुटी हुई, ६४. लोटती हुई, ६५. हाथी, ६६. तलवार, ६७. अत्यधिक लोभ, ६८. धोखा, ६६. विद्वान, १००. पृथ्वी तथा गायों की रक्षा करने वाला, इन्द्रियों अर्थात शरीर की रक्षा करने वाला, १०१. स्वर्ण के लोभ से युक्त, १०२. जन्मान्ध, १०३. कल्याणकारी, १०४. कांटा, १०५. असत्य, १०६. भूख से निर्बल, १०७. भवन, १०८. कुमार्ग का अनुसरण, १०६. धूर्त, वेश्यागामी, ११०. नाटक करने वाले नट आदि, १११. खरीदने योग्य, ११२. चुराने वाले, ११३. प्रगतिशीलता, ११४. अपनी, ११५. सरलता।